लिहाफ

हिन्दी ADDA

इस्मत चुग़ताई

लिहाफ

जब मैं जाडों में लिहाफ ओढती हूँ तो पास की दीवार पर उसकी परछाई हाथी की तरह झूमती हुई मालूम होती है। और एकदम से मेरा दिमाग बीती हुई दुनिया के पर्दों में दौड़ने-भागने लगता है। न जाने क्या कुछ याद आने लगता है।

माफ कीजियेगा, मैं आपको खुद अपने लिहाफ क़ा रूमानअंगेज ज़िक्र बताने नहीं जा रही हूँ, न लिहाफ से किसी किस्म का रूमान जोडा ही जा सकता है। मेरे खयाल में कम्बल कम आरामदेह सही, मगर उसकी परछाई इतनी भयानक नहीं होती जितनी -

जब लिहाफ क़ी परछाई दीवार पर डगमगा रही हो। यह जब का जिक्र है, जब मैं छोटी-सी थी और दिन-भर भाइयों और उनके दोस्तों के साथ मार-कुटाई में गुजार दिया करती थी। कभी - कभी मुझे खयाल आता कि मैं कमबख्त इतनी लडाका क्यों थी? उस उम्र में जबकि मेरी और बहनें आशिक जमा कर रही थीं, मैं अपने-पराये हर लडक़े और लडक़ी से जूतम-पैजार में मशगूल थी। यही वजह थी कि अम्माँ जब आगरा जाने लगीं तो हफ्ता-भर के लिए मुझे अपनी एक मुँहबोली बहन के पास छोड ग़यीं। उनके यहाँ, अम्माँ खूब जानती थी कि चूहे का बच्चा भी नहीं और मैं किसी से भी लड-भिड न सकँूगी। सजा तो खूब थी मेरी! हाँ, तो अम्माँ मुझे बेगम जान के पास छोड ग़यीं। वही बेगम जान जिनका लिहाफ अब तक मेरे जहन में गर्म लोहे के दाग की तरह महफूज है। ये वो बेगम जान थीं जिनके गरीब माँ-बाप ने नवाब साहब को इसलिए दामाद बना लिया कि गो वह पकी उम्र के थे मगर निहायत नेक। कभी कोई रण्डी या बाजारी औरत उनके यहाँ नजर न आयी। खुद हाजी थे और बहुतों को हज करा चुके थे।

मगर उन्हें एक निहायत अजीबो-गरीब शौक था। लोगों को कबूतर पालने का जुनून होता है, बटेरें लडाते हैं, मुर्गबाजी क़रते हैं - इस किस्म के वाहियात खेलों से नवाब साहब को नफरत थी। उनके यहाँ तो बस तालिब इल्म रहते थे। नौजवान, गोरे-गोरे, पतली कमरों के लडक़े, जिनका खर्च वे खुद बर्दाश्त करते थे।

मगर बेगम जान से शादी करके तो वे उन्हें कुल साजो-सामान के साथ ही घर में रखकर भूल गये। और वह बेचारी दुबली-पतली नाजुक़-सी बेगम तन्हाई के गम में घुलने लगीं। न जाने उनकी जिन्दगी कहाँ से शुरू होती है? वहाँ से जब वह पैदा होने की गलती कर चुकी थीं, या वहाँ से जब एक नवाब की बेगम बनकर आयीं और छपरखट पर जिन्दगी गुजारने लगीं, या जब से नवाब साहब के यहाँ लडक़ों का जोर बँधा। उनके लिए मुरग्गन हलवे और लजीज़ ख़ाने जाने लगे और बेगम जान दीवानखाने की दरारों में से उनकी लचकती कमरोंवाले लडक़ों की चुस्त पिण्डलियाँ और मोअत्तर बारीक शबनम के कुर्ते देख-देखकर अंगारों पर लोटने लगीं।

या जब से वह मन्नतों-मुरादों से हार गयीं, चिल्ले बँधे और टोटके और रातों की वजीफ़ाख्वानी भी चित हो गयी। कहीं पत्थर में जोंक लगती है! नवाब साहब अपनी जगह से टस-से-मस न हुए। फिर बेगम जान का दिल टूट गया और वह इल्म की तरफ मोतवज्जा हुई। लेकिन यहाँ भी उन्हें कुछ न मिला। इश्किया नावेल और जज्बाती अशआर पढक़र और भी पस्ती छा गयी। रात की नींद भी हाथ से गयी और बेगम जान जी-जान छोडक़र बिल्कुल ही यासो-हसरत की पोट बन गयीं।

चूल्हे में डाला था ऐसा कपडा-लत्ता। कपडा पहना जाता है किसी पर रोब गाँठने के लिए। अब न तो नवाब साहब को फुर्सत कि शबनमी कुर्तों को छोडक़र जरा इधर तवज्जा करें और न वे उन्हें कहीं आने-जाने देते। जब से बेगम जान ब्याहकर आयी थीं, रिश्तेदार आकर महीनों रहते और चले जाते, मगर वह बेचारी कैद की कैद रहतीं।

उन रिश्तेदारों को देखकर और भी उनका खून जलता था कि सबके-सब मजे से माल उडाने, उम्दा घी निगलने, जाडे क़ा साजो-सामान बनवाने आन मरते और वह बावजूद नई रूई के लिहाफ के, पडी सर्दी में अकडा करतीं। हर करवट पर लिहाफ नयीं-नयीं सूरतें बनाकर दीवार पर साया डालता। मगर कोई भी साया ऐसा न था जो उन्हें जिन्दा रखने लिए काफी हो। मगर क्यों जिये फिर कोई? जिन्दगी! बेगम जान की जिन्दगी जो थी! जीना बंदा था नसीबों में, वह फिर जीने लगीं और खूब जीं।

रब्बो ने उन्हें नीचे गिरते-गिरते सँभाल लिया। चटपट देखते-देखते उनका सूखा जिस्म भरना शुरू हुआ। गाल चमक उठे और हुस्न फूट निकला। एक अजीबो-गरीब तेल की मालिश से बेगम जान में जिन्दगी की झलक आयी। माफ क़ीजियेगा, उस तेल का नुस्खा आपको बेहतरीन-से-बेहतरीन रिसाले में भी न मिलेगा।

जब मैंने बेगम जान को देखा तो वह चालीस-बयालीस की होंगी। ओफ्फोह! किस शान से वह मसनद पर नीमदराज थीं और रब्बो उनकी पीठ से लगी बैठी कमर दबा रही थी। एक ऊदे रंग का दुशाला उनके पैरों पर पडा था और वह महारानी की तरह शानदार मालूम हो रही थीं। मुझे उनकी शक्ल बेइन्तहा पसन्द थी। मेरा जी चाहता था, घण्टों बिल्कुल पास से उनकी सूरत देखा करूँ। उनकी रंगत बिल्कुल सफेद थी। नाम को सुर्खी का जिक्र नहीं। और बाल स्याह और तेल में डूबे रहते थे। मैंने आज तक उनकी माँग ही बिगडी न देखी। क्या मजाल जो एक बाल इधर-उधर हो जाये। उनकी आँखें काली थीं और अबरू पर के जायद बाल अलहदा कर देने से कमानें-सीं खिंची होती थीं। आँखें जरा तनी हुई रहती थीं। भारी-भारी फूले हुए पपोटे, मोटी-मोटी पलकें। सबसे जियाद जो उनके चेहरे पर हैरतअंगेज ज़ाजिबे-नजर चीज थी, वह उनके होंठ थे। अमूमन वह सुर्खी से रंगे रहते थे। ऊपर के होंठ पर हल्की-हल्की मँूछें-सी थीं और कनपटियों पर लम्बे-लम्बे बाल। कभी-कभी उनका चेहरा देखते-देखते अजीब-सा लगने लगता था - कम उम्र लडक़ों जैसा।

उनके जिस्म की जिल्द भी सफेद और चिकनी थी। मालूम होता था किसी ने कसकर टाँके लगा दिये हों। अमूमन वह अपनी पिण्डलियाँ खुजाने के लिए किसोलतीं तो मैं चुपके-चुपके उनकी चमक देखा करती। उनका कद बहुत लम्बा था और फिर गोश्त

होने की वजह से वह बहुत ही लम्बी-चौडी मालूम होतीं थीं। लेकिन बहुत मुतनासिब और ढला हुआ जिस्म था। बडे-बडे चिकने और सफेद हाथ और सुडौल कमर ..तो रब्बो उनकी पीठ खुजाया करती थी। यानी घण्टों उनकी पीठ खुजाती - पीठ खुजाना भी जिन्दगी की जरूरियात में से था, बल्कि शायद जरूरियाते-जिन्दगी से भी ज्यादा।

रब्बो को घर का और कोई काम न था। बस वह सारे वक्त उनके छपरखट पर चढी क़भी पैर, कभी सिर और कभी जिस्म के और दूसरे हिस्से को दबाया करती थी। कभी तो मेरा दिल बोल उठता था, जब देखो रब्बो कुछ-न-कुछ दबा रही है या मालिश कर रही है।

कोई दूसरा होता तो न जाने क्या होता? मैं अपना कहती हूँ, कोई इतना करे तो मेरा जिस्म तो सड-ग़ल के खत्म हो जाय। और फिर यह रोज-रोज क़ी मालिश काफी नहीं थीं। जिस रोज बेगम जान नहातीं, या अल्लाह! बस दो घण्टा पहले से तेल और खुशबुदार उबटनों की मालिश शुरू हो जाती। और इतनी होती कि मेरा तो तखय्युल से ही दिल लोट जाता। कमरे के दरवाजे बन्द करके अँगीठियाँ सुलगती और चलता मालिश का दौर। अमूमन

सिर्फ रब्बो ही रही। बाकी की नौकरानियाँ बडबडातीं दरवाजे पर से ही, जरूरियात की चीजें देती जातीं।

बात यह थी कि बेगम जान को खुजली का मर्ज था। बिचारी को ऐसी खुजली होती थी कि हजारों तेल और उबटने मले जाते थे, मगर खुजली थी कि कायम। डाक्टर -हकीम कहते, "कुछ भी नहीं, जिस्म साफ चट पडा है। हाँ, कोई जिल्द के अन्दर बीमारी हो तो खैर।" नहीं भी, ये डाक्टर तो मुये हैं पागल! कोई आपके दुश्मनों को मर्ज है? अल्लाह रखे, खून में गर्मी है! रब्बो मुस्कराकर कहती, महीन-महीन नजरों से बेगम जान को घूरती! ओह यह रब्बो! जितनी यह बेगम जान गोरी थीं उतनी ही यह काली। जितनी बेगम जान सफेद थीं, उतनी ही यह सुर्ख। बस जैसे तपाया हुआ लोहा। हल्के-हल्के चेचक के दाग। गठा हुआ ठोस जिस्म। फुर्तीले छोटे-छोटे हाथ। कसी हुई छोटी-सी तोंद। बडे-बडे फ़ूले हुए होंठ, जो हमेशा नमी में डूबे रहते और जिस्म में से अजीब घबरानेवाली बू के शरारे निकलते रहते थे। और ये नन्हें-नन्हें फूले हुए हाथ किस कदर फूर्तीले थे! अभी कमर पर, तो वह लीजिए फिसलकर गये कूल्हों पर! वहाँ से रपटे रानों पर और फिर दौडे टखनों की तरफ! मैं तो जब कभी बेगम जान के पास बैठती, यही देखती कि अब उसके हाथ कहाँ हैं और क्या कर रहें हैं?

गर्मी-जाडे बेगम जान हैदराबादी जाली कारगे के कुर्ते पहनतीं। गहरे रंग के पाजामे और सफेद झाग-से कुर्ते। और पंखा भी चलता हो, फिर भी वह हल्की दुलाई जरूर जिस्म पर ढके रहती थीं। उन्हें जाडा बहुत पसन्द था। जाडे में मुझे उनके यहाँ अच्छा मालूम होता। वह हिलती-डुलती बहुत कम थीं। कालीन पर लेटी हैं, पीठ खुज रही हैं, खुश्क मेवे चबा रही हैं और बस! रब्बो से दूसरी सारी नौकरियाँ खार खाती थीं। चुडैल बेगम जान के साथ खाती, साथ उठती-बैठती और माशा अल्लाह! साथ ही सोती थी! रब्बो और बेगम जान आम जलसों और मजमूओं की दिलचस्प गुफ्तगू का मौजूँ थीं। जहाँ उन दोनों का जिक्र आया और कहकहे उठे। लोग न जाने क्या-क्या चुटकुले गरीब पर उडाते, मगर वह दुनिया में किसी से मिलती ही न थी। वहाँ तो बस वह थीं और उनकी खुजली!

मैंने कहा कि उस वक्त मैं काफी छोटी थी और बेगम जान पर फिदा। वह भी मुझे बहुत प्यार करती थीं। इत्तेफाक से अम्माँ आगरे गयीं। उन्हें मालूम था कि अकेले घर में भाइयों से मार-कुटाई होगी, मारी-मारी फिरूँगी, इसलिए वह हफ्ता-भर के लिए बेगम जान के पास छोड गयीं। मैं भी खुश और बेगम जान भी खुश। आखिर को अम्माँ की भाभी बनी हुई थीं।

सवाल यह उठा कि मैं सोऊँ कहाँ? कुदरती तौर पर बेगम जान के कमरे में। लिहाजा मेरे लिए भी उनके छपरखट से लगाकर छोटी-सी पलँगडी ड़ाल दी गयी। दस-ग्यारह बजे तक तो बातें करते रहे। मैं और बेगम जान चांस खेलते रहे और फिर मैं सोने के लिए अपने पलंग पर चली गयी। और जब मैं सोयी तो रब्बो वैसी ही बैठी उनकी पीठ खुजा रही थी। भंगन कहीं की! मैंने सोचा। रात को मेरी एकदम से आँख खुली तो मुझे अजीब तरह का डर लगने लगा। कमरे में घुप अँधेरा। और उस अँधेरे में बेगम जान का लिहाफ ऐसे हिल रहा था, जैसे उसमें हाथी

बन्द हो!

"बेगम जान!" मैंने डरी हुई आवाज निकाली। हाथी हिलना बन्द हो गया। लिहाफ नीचे दब गया।

"क्या है? सो जाओ।"

बेगम जान ने कहीं से आवाज दी।

"डर लग रहा है।"

मैंने चूहे की-सी आवाज से कहा।

"सो जाओ। डर की क्या बात है? आयतलकुर्सी पढ लो।"

"अच्छा।"

मैंने जल्दी-जल्दी आयतलकुर्सी पढी। मगर यालमू मा बीन पर हर दफा आकर अटक गयी। हालाँकि मुझे वक्त पूरी आयत याद है।

"तुम्हारे पास आ जाऊँ बेगम जान?"

"नहीं बेटी, सो रहो।" जरा सख्ती से कहा।

और फिर दो आदमियों के घुसुर-फुसुर करने की आवाज सुनायी देने लगी। हाय रे! यह दूसरा कौन? मैं और भी डरी।

"बेगम जान, चोर-वोर तो नहीं?"

"सो जाओ बेटा, कैसा चोर?"

रब्बो की आवाज आयी। मैं जल्दी से लिहाफ में मुँह डालकर सो गयी।

सुबह मेरे जहन में रात के खौफनाक नज्ज़ारे का खयाल भी न रहा। मैं हमेशा की वहमी हूँ। रात को डरना, उठ-उठकर भागना और बडबडाना तो बचपन में रोज ही होता था। सब तो कहते थे, मुझ पर भूतों का साया हो गया है। लिहाजा मुझे खयाल भी न रहा। सुबह को लिहाफ बिल्कुल मासूम नजर आ रहा था।

मगर दूसरी रात मेरी आँख खुली तो रब्बो और बेगम जान में कुछ झगडा बडी ख़ामोशी से छपरखट पर ही तय हो रहा था। और मेरी खाक समझ में न आया कि क्या फैसला हुआ? रब्बो हिचकियाँ लेकर रोयी, फिर बिल्ली की तरह सपड-सपड रकाबी चाटने-जैसी आवाजें आने लगीं, ऊँह! मैं तो घबराकर सो गयी।

आज रब्बो अपने बेटे से मिलने गयी हुई थी। वह बडा झगडालू था। बहुत कुछ बेगम जान ने किया - उसे दुकान करायी, गाँव में लगाया, मगर वह किसी तरह मानता ही नहीं था। नवाब साहब के यहाँ कुछ दिन रहा, खूब जोडे-बागे भी बने, पर न जाने क्यों ऐसा भागा कि रब्बो से मिलने भी न आता। लिहाजा रब्बो ही अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ उससे मिलने गयी थीं। बेगम जान न जाने देतीं, मगर रब्बो भी मजबूर हो गयी।

सारा दिन बेगम जान परेशान रहीं। उनका जोड-ज़ोड टूटता रहा। किसी का छूना भी उन्हें न भाता था। उन्होंने खाना भी न खाया और सारा दिन उदास पडी रहीं।

"मैं खुजा दूँ बेगम जान?"

मैंने बडे शौक से ताश के पत्ते बाँटते हुए कहा। बेगम जान मुझे गौर से देखने लगीं।

"मैं खुजा दूँ? सच कहती हूँ!"

मैंने ताश रख दिये।

मैं थोडी देर तक खुजाती रही और बेगम जान चुपकी लेटी रहीं। दूसरे दिन रब्बो को आना था, मगर वह आज भी गायब थी। बेगम जान का मिजाज चिडचिडा होता गया। चाय पी-पीकर उन्होंने सिर में दर्द कर लिया। मैं फिर खुजाने लगी उनकी पीठ-चिकनी मेज क़ी तख्ती-जैसी पीठ। मैं हौले-हौले खुजाती रही। उनका काम करके कैसी खुशी होती थी!

"जरा जोर से खुजाओ। बन्द खोल दो।" बेगम जान बोलीं, "इधर ..एे है, जरा शाने से नीचे ..हाँ ...वाह भइ वाह! हा!हा!" वह सुरूर में ठण्डी-ठण्डी साँसें लेकर इत्मीनान जाहिर करने लगीं।

"और इधर ..." हालाँकि बेगम जान का हाथ खूब जा सकता था, मगर वह मुझसे ही खुजवा रही थीं और मुझे उल्टा फख्र हो रहा था। "यहाँ ..ओई! तुम तो गुदगुदी करती हो ..वाह!" वह हँसी। मैं बातें भी कर रही थी और खुजा भी रही थी।

"तुम्हें कल बाजार भेजँूगी। क्या लोगी? वही सोती-जागती गुडिया?"

"नहीं बेगम जान, मैं तो गुडिया नहीं लेती। क्या बच्चा हूँ अब मैं?"

"बच्चा नहीं तो क्या बूढी हो गयी?" वह हँसी "गुडिया नहीं तो बनवा लेना कपडे, पहनना खुद। मैं दूँगी तुम्हें बहुत-से कपडे। सुना?" उन्होंने करवट ली।

"अच्छा।" मैंने जवाब दिया।

"इधर .." उन्होंने मेरा हाथ पकडक़र जहाँ खुजली हो रही थी, रख दिया। जहाँ उन्हें खुजली मालूम होती, वहाँ मेरा हाथ रख देतीं। और मैं बेखयाली में, बबुए के ध्यान में डूबी मशीन की तरह खुजाती रही और वह मुतवातिर बातें करती रहीं।

"सुनो तो ...तुम्हारी फ्राकें कम हो गयी हैं। कल दर्जी को दे दूँगी, कि नई सी लाये। तुम्हारी अम्माँ कपडा दे गयी हैं।"

"वह लाल कपडे क़ी नहीं बनवाऊँगी। चमारों-जैसा है!" मैं बकवास कर रही थी और हाथ न जाने कहाँ-से-कहाँ पहुँचा। बातों-बातों में मुझे मालूम भी न हुआ।

बेगम जान तो चुप लेटी थीं। "अरे!" मैंने जल्दी से हाथ खींच लिया।

"ओई लडक़ी! देखकर नहीं खुजाती! मेरी पसलियाँ नोचे डालती है!"

बेगम जान शरारत से मुस्करायीं और मैं झेंप गयी।

"इधर आकर मेरे पास लेट जा।"

"उन्होंने मुझे बाजू पर सिर रखकर लिटा लिया।

"अब है, कितनी सूख रही है। पसलियाँ निकल रही हैं।" उन्होंने मेरी पसलियाँ गिनना शुरू कीं।

"ऊँ!" मैं भुनभुनायी।

"ओइ! तो क्या मैं खा जाऊँगी? कैसा तंग स्वेटर बना है! गरम बनियान भी नहीं पहना तुमने!"

मैं कुलबुलाने लगी।

"कितनी पसलियाँ होती हैं?" उन्होंने बात बदली।

"एक तरफ नौ और दूसरी तरफ दस।"

मैंने स्कूल में याद की हुई हाइजिन की मदद ली। वह भी ऊटपटाँग।

"हटाओ तो हाथ ...हाँ, एक ...दो ..तीन .."

मेरा दिल चाहा किसी तरह भागूँ ...और उन्होंने जोर से भींचा।

"ऊँ!" मैं मचल गयी।

बेगम जान जोर-जोर से हँसने लगीं।

अब भी जब कभी मैं उनका उस वक्त का चेहरा याद करती हूँ तो दिल घबराने लगता है। उनकी आँखों के पपोटे और वजनी हो गये। ऊपर के होंठ पर सियाही घिरी हुई थी। बावजूद सर्दी के, पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूँदें होंठों और नाक पर चमक रहीं थीं। उनके हाथ ठण्डे थे, मगर नरम-नरम जैसे उन पर की खाल उतर गयी हो। उन्होंने शाल उतार दी थी और कारगे के महीन कुर्ता में उनका जिस्म आटे की लोई की तरह चमक रहा था। भारी जडाऊ सोने के बटन गरेबान के एक तरफ झूल रहे थे। शाम हो गयी थी और कमरे में अँधेरा घुप हो रहा था। मुझे एक नामालूम डर से दहशत-सी होने लगी। बेगम जान की गहरी-गहरी आँखें!

मैं रोने लगी दिल में। वह मुझे एक मिट्टी के खिलौने की तरह भींच रही थीं। उनके गरम-गरम जिस्म से मेरा दिल बौलाने लगा। मगर उन पर तो जैसे कोई भूतना सवार था और मेरे दिमाग का यह हाल कि न चीखा जाये और न रो सकँू।

थोडी देर के बाद वह पस्त होकर निढाल लेट गयीं। उनका चेहरा फीका और बदरौनक हो गया और लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगीं। मैं समझी कि अब मरीं यह। और वहाँ से उठकर सरपट भागी बाहर।

शुक्र है कि रब्बो रात को आ गयी और मैं डरी हुई जल्दी से लिहाफ ओढ सो गयी। मगर नींद कहाँ? चुप घण्टों पडी रही।

अम्माँ किसी तरह आ ही नहीं रही थीं। बेगम जान से मुझे ऐसा डर लगता था कि मैं सारा दिन मामाओं के पास बैठी रहती। मगर उनके कमरे में कदम रखते दम निकलता था। और कहती किससे, और कहती ही क्या, कि बेगम जान से डर लगता है? तो यह बेगम जान मेरे ऊपर जान छिडक़ती थीं ...

आज रब्बो में और बेगम जान में फिर अनबन हो गयी। मेरी किस्मत की खराबी कहिए या कुछ और, मुझे उन दोनों की अनबन से डर लगा। क्योंकि फौरन ही बेगम जान को खयाल आया कि मैं बाहर सर्दी में घूम रही हूँ और मरूँगी निमोनिया में!

"लडक़ी क्या मेरी सिर मुँडवायेगी? जो कुछ हो-हवा गया और आफत आयेगी।"

उन्होंने मुझे पास बिठा लिया। वह खुद मुँह-हाथ सिलप्ची में धो रही थीं। चाय तिपाई पर रखी थी।

"चाय तो बनाओ। एक प्याली मुझे भी देना।" वह तौलिया से मुँह खुश्क करके बोली, "मैं जरा कपडे बदल लँू।"

वह कपडे बदलती रहीं और मैं चाय पीती रही। बेगम जान नाइन से पीठ मलवाते वक्त अगर मुझे किसी काम से बुलाती तो मैं गर्दन मोडे-मोडे जाती और वापस भाग आती। अब जो उन्होंने कपडे बदले तो मेरा दिल उलटने लगा। मुँह मोडे मैं चाय पीती रही।

"हाय अम्माँ!" मेरे दिल ने बेकसी से पुकारा, "आखिर ऐसा मैं भाइयों से क्या लडती हूँ जो तुम मेरी मुसीबत .."

अम्माँ को हमेशा से मेरा लडक़ों के साथ खेलना नापसन्द है। कहो भला लडक़े क्या शेर-चीते हैं जो निगल जायेंगे उनकी लाडली को? और लडक़े भी कौन, खुद भाई और दो-चार सडे-सडाये जरा-जरा-से उनके दोस्त! मगर नहीं, वह तो औरत जात को सात तालों में रखने की कायल और यहाँ बेगम जान की वह दहशत, कि दुनिया-भर के गुण्डों से नहीं।

बस चलता तो उस वक्त सड़क़ पर भाग जाती, पर वहाँ न टिकती। मगर लाचार थी। मजबूरन कलेजे पर पत्थर रखे बैठी रही।

कपडे बदल, सोलह सिंगार हुए, और गरम-गरम खुशबुओं के अतर ने और भी उन्हें अंगार बना दिया। और वह चलीं मुझ पर लाड उतारने।

"घर जाऊँगी।"

मैं उनकी हर राय के जवाब में कहा और रोने लगी।

"मेरे पास तो आओ, मैं तुम्हें बाजार ले चलूँगी, सुनो तो।"

मगर मैं खली की तरह फैल गयी। सारे खिलौने, मिठाइयाँ एक तरफ और घर जाने की रट एक तरफ।

"वहाँ भैया मारेंगे चुडैल!" उन्होंने प्यार से मुझे थप्पड लगाया।

"पडे मारे भैया," मैंने दिल में सोचा और रूठी, अकडी बैठी रही।

"कच्ची अमियाँ खट्टी होती हैं बेगम जान!"

जली-कटी रब्बों ने राय दी।

और फिर उसके बाद बेगम जान को दौरा पड ग़या। सोने का हार, जो वह थोडी देर पहले मुझे पहना रही थीं, टुकडे-टुकडे हो गया। महीन जाली का दुपट्टा तार-तार। और वह माँग, जो मैंने कभी बिगडी न देखी थी, झाड-झंखाड हो गयी।

"ओह! ओह! ओह! ओह!" वह झटके ले-लेकर चिल्लाने लगीं। मैं रपटी बाहर।

बडे ज़तनों से बेगम जान को होश आया। जब मैं सोने के लिए कमरे में दबे पैर जाकर झाँकी तो रब्बो उनकी कमर से लगी जिस्म दबा रही थी।

"जूती उतार दो।" उसने उनकी पसलियाँ खुजाते हुए कहा और मैं चुहिया की तरह लिहाफ में दुबक गयी।

सर सर फट खच!

बेगम जान का लिहाफ अँधेरे में फिर हाथी की तरह झूम रहा था।

"अल्लाह! आँ!" मैंने मरी हुई आवाज निकाली। लिहाफ में हाथी फुदका और बैठ गया। मैं भी चुप हो गयी। हाथी ने फिर लोट मचाई। मेरा रोआँ-रोआँ काँपा। आज मैंने दिल में ठान लिया कि जरूर हिम्मत करके सिरहाने का लगा हुआ बल्ब जला दूँ। हाथी फिर फडफ़डा रहा था और जैसे उकडँू बैठने की कोशिश कर रहा था। चपड-चपड कुछ खाने की आवाजें आ रही थीं - जैसे कोई मजेदार चटनी चख रहा हो। अब मैं समझी! यह बेगम जान ने आज कुछ नहीं खाया।

और रब्बो मुई तो है सदा की चट्टू! जरूर यह तर माल उडा रही है। मैंने नथुने फुलाकर सूँ-सूँ हवा को सूँघा। मगर सिवाय अतर, सन्दल और हिना की गरम-गरम खुशबू के और कुछ न महसूस हुआ।

लिहाफ फ़िर उमँडना शुरू हुआ। मैंने बहुतेरा चाहा कि चुपकी पडी रहूँ, मगर उस लिहाफ ने तो ऐसी अजीब-अजीब शक्लें बनानी शुरू कीं कि मैं लरज गयी।

मालूम होता था, गों-गों करके कोई बडा-सा मेंढक फूल रहा है और अब उछलकर मेरे ऊपर आया!

"आ ... न ...अम्माँ!" मैं हिम्मत करके गुनगुनायी, मगर वहाँ कुछ सुनवाई न हुई और लिहाफ मेरे दिमाग में घुसकर फूलना शुरू हुआ। मैंने डरते-डरते पलंग के दूसरी तरफ पैर उतारे और टटोलकर बिजली का बटन दबाया। हाथी ने लिहाफ के नीचे एक

कलाबाजी लगायी और पिचक गया। कलाबाजी लगाने मे लिहाफ का कोना फुट-भर उठा -

अल्लाह! मैं गडाप से अपने बिछौने में ! ! !